द्वितीय अध्याय

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों के विकास की रूपरेखा

द्वितीय अध्याय

हिन्दी में ऐतिहासिक नाटकों के विकास की रूपरेखा --

हिन्दी में ऐतिहासिक नाटकों के विकास --

भारतीय काव्य-शास्त्र में नाटक को दृश्य रचना की संज्ञा दी गई है। मनुष्य के जीवन का यथार्थ चित्रण नाटक में दिखाई देता है। नाटककार के निजी अनुभवों और समाज के प्रति उसके दायित्व के एकीकरण की जितनी क्षमता नाटकों में होती है, अन्य विधाओं में उतनी नहीं होती। इसी कारण अपनी संप्रेषणीयता के कारण नाटक को साहित्य की अन्य विधाओं से एक प्रकार की विशिष्टता मिली है।

संस्कृत भाषा के महान नाटककार कालीदास ने नाटक का गौरव करते हुये कहा है --

' नाट्य-कला को भरत जैसे ऋषिमुनियों ने देवों को समर्पित करने के उद्देश्य से किया जानेवाला, आँखों से देखा जानेवाला सुंदर यज्ञ कहा है। नाट्य के अधिष्ठाता देवता नटराज रुद्र ने इस कला को अपने और अपनी अर्धांगिनी पार्वती के रूप में अभिव्यक्त किया है। भाव यह है कि, नाटक में पुरुष और नारी दोनों पात्र रहते हैं। इस महानता के अतिरिक्त नाटक में जन-साधारण के जीवन के विविध रसयुक्त दर्शन होते हैं। भले ही रसिकों की अभिरुचि भिन्न भिन्न हो

BARR. BALASAHEB KHARDEKAR LIBRARY
SHIVAJI UNIVERSITY, KOLHAPUR.
SHIVAJI UNIVERSITY LIBRARY KOLHAPUR

नाटक सभी प्रकार के दर्शकों का समाधान करता है । [१]

हिन्दी नाटक --

मानव जीवन स्वयं एक नाटक है, इस का प्रतिबिंब हिन्दी नाटक में मिलता है । हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास के बारे में अनेक विद्वानों में मतभेद दिखाई देते हैं । कोई विद्वान हिन्दी नाटक का निर्माण काल रासो काव्य ग्रंथों से मानता है, तो कोई विद्वान आधुनिक युग को । इसी लिए हिन्दी नाटक का विकास देखते समय हिन्दी नाटक का काल विभाजन ज्यो भिन्न भिन्न विद्वानों ने किया है, उसे देखना जरुर है । उसी के आधार पर हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की विकासात्मक रुपरेखा निश्चित की जा सकती है ।

आचार्य रामचंद्र शुक्ल जी अपने ' हिन्दी साहित्य का इतिहास ' में नाटक का काल विभाजन तीन उत्थानों में किया है ---

१) प्रथम उत्थान -- (भारतेन्दु युग)
१८५० ई. से १८९३ ई. तक ।

२) द्वितीय उत्थान -(द्विवेदी युग)
१८९३ ई. से १९२८ ई. तक ।

३) तृतीय उत्थान - (प्रसाद युग)
१९२८ ई. से आजतक ।

---

१ देवानामिदमामनन्ति मुनयः कान्तं क्रतुं चाक्षुषं,
रुद्रेणेदमुमाकृतव्यतिकरे, स्वांगे विभक्तं द्विधा ।
त्रैगुण्योद्भवमत्र लोकचरितं नानारसं दृश्यते,
नाट्यं भिन्नरुचेर्जनस्य बहुधाप्येकं समाराधनम् ।।
मालविकाग्निमित्र १ । ४

'हिन्दी नाटक : उद्‌भव और विकास' ग्रंथ में डॉ. दशरथ ओझा जी ने नाटक का उद्‌भव रासो काल से माना है। उनके मतानुसार नाटक का कालविभाजन इसप्रकार है ---

प्रथम उत्थान - १५४३ ई. से पूर्व ।
द्वितीय उत्थान-१५४३ ई. से १८४३ ई. तक,
तृतीय उत्थान -१८४३ ई. से १८६३ ई. तक,
चतुर्थ उत्थान - १८६३ ई. से १९१३ ई. तक,
पंचम उत्थान - १९१३ ई. से १९४३ई. तक,
नवीन उत्थान - १९४३ ई. से आगे ।

इस तरह डॉ. सोमनाथ गुप्त जी ने भी नाटक के काल का वर्गीकरण किया है --

हिन्दी नाटक साहित्य का आरंभ १६४३ ई. से १८६६ ई. तक
हिन्दी नाटक साहित्य का विकास १८६६ ई. से १९०४ ई. तक
सन्धिकाल - १९०४ ई. से १९१५ ई. तक :
प्रसाद युग - १९१५ ई. से १९३३ ई. तक ।
प्रसादोत्तर युग - १९३३ ई. से १९४४ ई. तक ।

इस प्रकार अनेक विद्वानों ने अपने मतानुसार नाटक के कालविभाजन को प्रस्तुत किया है। जब हम इन सभी कालविभाजन को देखते हैं तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हिन्दी नाटक का प्रारम्भ भारतेन्दु युग से ही हुआ है। भारतेन्दु के पूर्व कुछ पुनरुक्त नाटकों की रचना हुई थी जिनमें भारतेन्दु के पिता बाबू गिरिधरदास कृत 'नहुष' नाटक को भारतेन्दु ने प्रथम हिन्दी नाटक स्वीकार किया है। लेकिन आज यह बात सिद्ध हो गई है कि उसके पहले मराठी के विष्णुदास भावे द्वारा लिखे - 'सीता स्वयंवर' (१८५३) ई. तथा कई अन्य हिन्दी नाटक बनारस में खेले गये थे। अर्थात यह नाटक भारतेन्दु पूर्व लिखे और खेले थे। १८६८ ई. में भारतेन्दु कृत 'विद्या सुंदर' नाटक को हिन्दी नाटक का शिलान्यास माना जाता है। इसप्रकार हिन्दी नाटक का विकास भारतेन्दु युग से ही प्रारम्भ होता है।

परन्तु हमारा आलोच्य विषय यहाँ विशेषकर ऐतिहासिक नाटक से संबंधित है। इसलिए पूरे हिन्दी नाट्य साहित्य के विकास को न देखकर केवल ऐतिहासिक नाटकों के बारे में ही विचार करें। इसके पहले ऐतिहासिक नाटकों की परिभाषा तथा स्वरूप पर प्रकाश डालें ---

ऐतिहासिक नाटक - परिभाषा और स्वरूप --

ऐतिहासिक नाटक की एक निश्चित परिभाषा अभी तक नहीं दी जा सकी है। वस्तुत: किसी विधा को परिभाषित करने का मतलब है उसकी मान्यताओं के साथ उसका समग्र प्रत्यक्षीकरण और ऐतिहासिक नाटकों की समग्रता कभी एक बिन्दु पर व्यक्त नहीं हुई है। कभी रूप को लेकर एक परिभाषा दी जाती है। तो कभी विषय के आधार पर परिभाषित किया जाता है। इसलिए हिन्दी ही नहीं, अन्य भाषाओं के साहित्य में भी ऐतिहासिक नाटक की अभी कोई ऐसी परिभाषा नहीं दी जा सकी है। जो उसकी सभी विशिष्टताओं और बारीकियों को समेटनेवाली तथा सर्वमान्य हो। आइ॰ विनर ने ऐतिहासिक नाटक को इतिहास के उद्देश्य को लेकर लिखी गई एक नाटकीय व्यवस्था माना है। ऐतिहासिक नाटक में उसने इतिहास के लक्ष्य को प्रधानता दी है। ऐतिहासिक नाटक की परिभाषा केवल रूप के आधार पर भी नहीं दी जा सकती, क्योंकि इसके अनेक रूप हो सकते हैं और इसमें रूप से अधिक महत्त्वपूर्ण नाटककार का लक्ष्य होता है। नाटक ऐतिहासिक तभी हो सकता है जब उसमें नाटककार के युग का चित्रण होगा। ऐतिहासिक नाटककार इतिहास से गृहीत घटनाओं में कार्य-कारण संबंध नाटकीय कल्पना द्वारा कलात्मक ढंग से स्थापित करता है। जिस युग का चित्रण वह अपने नाटक में करता है, वह अपरिचित नहीं लगता, न ही उसमें चित्रित चरित्र-चित्रण के व्यवहार भिन्न होते हैं। वे हमारे निकट के ही प्रतीत होते हैं।

नाटक जीवन का कलात्मक संकलन है और ऐतिहासिक नाटक नाट्य-साहित्य की विधा विशेष वस्तुनिष्ठ तथ्यों की रसात्मक,उदात्त कृती भावाभिव्यक्ति है। ऐतिहासिक नाटककार अतीत-घटना प्रसंगों के प्रति इतिहासकार की सम्पूर्ण परिदृष्टि के स्थान पर घटना,पात्र अथवा काल-विशेष के महत् अंश को

अभिव्यंजित करता है । दूसरे शब्दों में ऐतिहासिक नाटक इतिहास की साहित्यिक प्रतिकृति है जो नाटककार की सृजनात्मक अथवा सत्याभास कल्पना शक्ति से परिवेष्टित होती है । इस कल्पना-शक्ति के बल पर ही नाटककार इतिहास की विश्रृंखलित घटनाओं एवं चरित्रों में तारतम्य स्थापित करता है, टूटे कथाप्रसंगों को जोडता है तथा एकरसता को दूर कर नाटकीय प्रभावान्विति बनाए रखने में सक्षम होता है ।

ऐतिहासिक नाटक को 'इतिहास का रूप' कहने का तात्पर्य सिर्फ इतना हो सकता है कि उसकी बाह्य रूपरेखा इतिहास के आश्रित रहती है । रचनाकार जब ऐतिहासिक नाटक लिखता है, तो उसके पीछे राष्ट्रीय एकता और राजनीतिक उद्देश्य का स्वर अवश्य होता है । हिन्दी में स्वतंत्रता पूर्व लिखे जानेवाले नाटकों में राष्ट्रीय चेतना प्रमुख रही है । नाटक का वास्तविक निरूपण करते समय व्यक्तिगत और राजनीतिक आचरणों के बीच रेखा खींचना कठिन हो जाता है । हिन्दी में ही कई नाटककारों ने अपनी लक्ष्यसिध्दि के लिए घटनाओं के स्वरूप में बदल किया है । इससे यह बात साफ हो जाती है, कि ऐतिहासिक नाटक में इतिहास नाटककार के लक्ष्य के अनुसार नियोजित होता है ।

इतिहास, कल्पना और लक्ष्य तीनों को ध्यान में रखकर इसकी परिभाषा इसप्रकार की जा सकती है ---

'ऐतिहासिक नाटक इतिहास से गृहीत कथावस्तु का नाटकीय कल्पना द्वारा किया गया सोद्देश्य कलात्मक नियोजन होता है ।'

ऐतिहासिक नाटक इतिहास के तथ्यों पर आधारित रचनात्मक कृति है, जिसमें जीवन के अव्यक्त प्रसंगों को व्यक्त करने और राजनीति की अपेक्षा सामाजिक, सांस्कृतिक उत्थान के मूल प्रेरणा स्त्रोतों को रेखांकित करने का प्रयास रहता है ।

ऐतिहासिक नाटक में दो प्रकार की उपलब्धियाँ होती हैं । एक ओर इतिहास के माध्यम से अतीत जीवन और जगत् का प्रत्यक्षीकरण होता है, दूसरी ओर कला के माध्यम से मानवीय प्रवृत्तियाँ, विशेष क्षणों में किए गए आचरणों

का अनुभव होता हैं । ऐतिहासिक नाटककार का यह दायित्व होता है कि जहाँ तक संभव हो, इतिहास के तथ्यों के साथ न्याय करे । नाटकीय रचनातंत्र के साथ इतिहास के प्रति बरती गई सुरक्षा को देखकर ही ऐतिहासिक नाटक का उचित मूल्यांकन किया जाता हैं । इतना निश्चित है कि ऐतिहासिक नाटक में इतिहासकार और नाटककार-दोनों का मिलाप दिखाई देता हैं ।

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटक --

हिन्दी में ऐतिहासिक नाटकों को उन्नीसवी शताब्दी के उतरार्ध में अकस्मात् उद्‌भूत माना जा सकता हैं । अकस्मात् इसलिए कि इसके पहले न तो ऐतिहासिक नाटक लिखने का प्रयास किया गया था और न समसामयिक समस्याओं को अतीत के संदर्भ में देखने का विचार ही नाटककारों के मन में कभी आया था । हिन्दी में ऐतिहासिक नाटकों का सूत्रपात भारतेन्दु से होता हैं ---

ऐतिहासिक नाटक : काल विभाजन --

हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की विकासात्मक रुपरेखा देखने समय समग्र नाटक साहित्य का, काल के अनुरुप विभाजन करना युक्तिसंगत हैं । हिन्दी नाटक के प्रारंभिक काल से लेकर आजतक पूरे नाटक साहित्य को इसप्रकार विभाजित किया जा सकता है ---

अ) भारतेन्दु काल	- १८६८ ई. से १९१५ ई. तक,
ब) प्रसाद काल	- १९१५ ई. से १९३३ ई. तक,
क) प्रसादोत्तर काल	- १९३३ ई. से १९४७ ई. तक
ड) स्वातंत्र्योत्तर काल	- १९४७ ई. से १९७० ई. तक ।

अतः हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों की विकासात्मक रुपरेखा उपर्युक्त कालविभाजन के आधारपर देखेंगे ।

अ) भारतेन्दु युग --

हिन्दी साहित्य में ऐतिहासिक,नाट्य रचनाओं का प्रारम्भ भारतेन्दु कृत 'नीलदेवी' (१८८०) एकांकी गीति-नाट्य से हुआ है । डॉ.नवरत्न कपूर ने 'रत्नावली' नाटक को ही हिन्दी का प्रथम ऐतिहासिक नाटक स्वीकार किया है, किन्तु यह निर्विवाद है कि यह रचना मौलिक न होकर अनूदित है । इसी काल में राधाकृष्णदास ने 'पद्मावती' (१८८२ ई.) में नारी के शौर्य और बलिदान का वर्णन किया है। उनका दूसरा नाटक महाराणा प्रताप (१८९७) में उन्होंने महाराणा प्रताप की देशभक्ति और त्याग को प्रदर्शित किया है । प्रताप का चरित्र ऐसे राजपूत वीर का आदर्श चरित्र है । जो अनेक विपत्तियाँ सहकर भी आत्मसम्मान नहीं छोडता । काशीनाथ खत्री कृत 'तीन परम मनोहर' ऐतिहासिक रूपक (१८८४) इसमें 'सिन्धु देश की राजकुमारियाँ', 'गुन्नौर की रानी' और 'ब लव जी का स्वप्न' संकलित है ।

पं.राधाकृष्ण गोस्वामी कृत 'सती चन्द्रावली (१८९० ई.) जो चन्द्रावली नाम की हिन्दू नारी के पातिव्रत्य और त्याग के आदर्श को लेकर लिखी गई नाटिका है । 'अमरसिंह राठौर' (१८८५ ई.) सृजन किया जिसमें जोधपुर के महाराज गजसिंह के पुत्र अमरसिंह की वीरतापूर्ण गाथा है । इसी काल में सैयद शरअली कृत 'कत्ल हकीकत राय' (१८९७ ई.), गंगाप्रसाद कृत 'वीर जयमल' नाटक का सृजन हुआ । श्री निवासदास कृत 'संयोगिता स्वयंवर' (१८८५ ई.) और बैकुण्ठराय दुग्गल कृत 'श्री हर्ष' (१८८४ ई.) ,शालिग्राम कृत 'पुरन्विक्रम' आदि उल्लेखनीय हैं । रत्नचन्द वकील का 'न्यायसभा' नाटक(१८८७ ई.) बालकृष्ण भट्ट का 'चन्द्रसेन', 'पं.जगन्नारायण शर्मा का 'अकबर', 'गोरक्षा व्या' (१८८९ ई.) , राम नरेश शर्मा का 'सिंह विजय' (१८९६ ई.) प्रतापनारायण मिश्र का 'हठी हमीर' (१८८५ ई.), कृष्णलाल वर्मा का 'दलजीतसिंह' और बलदेव प्रसाद मिश्र का 'मीराबाई' (१८९७ ई.) आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे गये । गोपालराम गहमरी कृत 'यौवन योगिनी' (१८९३ ई.) उल्लेखनीय रचना है ।

इसी काल में शालिग्राम वैश्य जी ने मध्यकालीन इतिहास की अपेक्षा प्राचीन कालीन इतिहास को लेकर 'मोरध्वज' और 'पुरन-विक्रम' (१९०६ ई.) नाटक लिखे । गोपालराम गहमरी का 'बनवीर' और 'यौवन योगिनी' उल्लेखनीय हैं । गुप्तबन्धु का 'महाराणा प्रताप', 'परमेश्वर मिश्र का 'रूपमती' (१९०६ ई.), शुकदेव नारायण सिंह का 'वीर सरदार' (१९०९ ई.), हरिदास माणिक का 'संयोगिता हरण' (१९१५ई.) आनन्दप्रसाद खत्री का 'गौतम बुध्द', राम प्रसाद मिश्र का 'महाराणा राजसिंह', भंवर लाल सोना का 'वीर कुमार' छत्रसाल', हरिचरण श्रीवास्तव का 'पृथ्वीराज' आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे गये ।

उपर्युक्त सभी नाटकों का मूलस्रोत बंगाली नाटक साहित्य था । बंगाली नाटककार द्विजेंद्रलाल राय के नाटकों का हिन्दी में केवल अनुवाद हो रहा था । इसी अनुवाद परम्परा में भी कई ऐतिहासिक नाटक लिखे गये । जिनमें प्रमुख हैं -- शिवप्रसाद चारण - आपने 'पन्ना धाय', 'महाराणा प्रतापसिंह', 'शशांक नरेंद्रगुप्त' सिन्धु विजय', 'गोरा बादल'; महाराणा संग्रामसिंह', 'हिरोल', 'वीर हमीर'; 'बुन्देला', 'हेमू विक्रमादित्य', 'जुझारसिंह' 'छत्रसाल' और 'सदाशिव राव भाऊ' आदि नाटक अनेक नाटकों का निर्माण किया । इसी काल में पं. जिनेश्वर दयाल मायल जी ने 'सम्राट चन्द्रगुप्त' नाटक, द्विजेंद्रलाल राय के नाटक का भावानुवाद के रूप में लिखा है ।

इस काल के नाटकों पर समग्रता से विचार करने पर स्पष्ट हो जाता है, कि नाटकीय कला की दृष्टि से बहुत उच्चकोटि की रचना इस समय नहीं की जा सकी । वैसे यह स्वाभाविक भी था । क्योंकि यह नाटकों का प्रारंभिक काल तो था ही, ऐतिहासिक नाटक लिखने का भी प्रथम प्रयास था । दूसरी बात यह स्पष्ट हो जाती है कि इस काल के अधिकतर ऐतिहासिक नाटक बंगाली नाटकों के अनुवाद या उनसे प्रेरणा लेकर लिखे गये हैं । अत: यह स्पष्ट होता है, कि भारतेन्दु युगीन ऐतिहासिक नाटक मौलिक न होकर अनूदित हैं । फिर भी विषयवस्तु की दृष्टि से यह नाटक समाज को प्रेरणादायक हुये हैं । भारतीय गौरव के माध्यम से देशहित की भावना को प्रचारित करने एवं समसामयिक समस्याओं के समाधान के लिए

इतिहास को नाटककारों ने ग्रहण किया । इतिहास प्रसिध्द पुरुष तथा नारी का चरित्र इसमें व्यक्त हुआ है । ऐतिहासिक नाट्य रचना में जिस तरह की प्रामाणिकता, कल्पनात्मक निर्माण और वस्तुयोजना की आवश्यकता होती रहती है, उसका प्राय: इन नाटककारों में अभाव है । इसी की आधार पर हिन्दी नाटक का विकास हुआ । ऐतिहासिक नाटकों का विकसित रूप हमें जयशंकर प्रसाद के नाट्य-क्षेत्र में आगमन होते ही दिखाई देता है ।

२) प्रसाद युग --

जयशंकर प्रसाद के नाटक क्षेत्र में अवतीर्ण होने से हिन्दी-नाट्य-साहित्य का कायाकल्प हो गया । आधुनिक हिन्दी नाटकों का पूर्ण साहित्यिक स्वरूप इन्हीं नाटकों में दिखाई देता है । इन्हीं के गंभीर ऐतिहासिक अध्ययन पर प्राचीन भारतीय गौरव व सभ्यता का चित्र उपस्थित करनेवाली नाटक लिखे । इनके कथानक महाभारत के उत्तरार्ध से लेकर सम्राट हर्षवर्धन के शासनकाल तक लिखे गये । क्योंकि यही काल भारतीय सभ्यता के गौरव का काल रहा है । प्रसाद के प्रयत्न और प्रभाव से हिन्दी नाट्य-कला में मूलभूत परिवर्तन हुए ।

प्रसाद का युग राजनीतिक, सामाजिक, और धार्मिक उथल-पुथल का युग था । इस परिस्थिति ने हमें बाध्य किया कि हम अपनी संस्कृति और राष्ट्रीयता के विषय में सोचें । उस समय कोई हल नहीं सूझता था । प्रसाद ने इसलिए प्रेरणा ग्रहण करने के लिए अतीत की ओर देखा । प्रसाद मूलत: दार्शनिक थे । उनका दृढ विचार था कि अखंड भारतीयता का सांस्कृतिक पुनरुत्थान यदि संभव है, तो भारतीयता के उज्ज्वलतम उदाहरणों को ही भारतीयों के सम्मुख रखना होगा । इसके लिए वे प्राचीन भारत और नवीन यूरोप को एक साथ लेकर चलें । अपनी इच्छा के अनुरूप प्रसाद जी ने 'राज्यश्री' (१९१५ ई.), 'स्कन्दगुप्त' (१९२२ ई.) 'अजातशत्रु' (१९२२ ई.), 'चन्द्रगुप्त' (१९३१ ई.) 'विशाख' (१९२१ ई.), 'ध्रुवस्वामिनी' (१९३३ ई.), 'कामना' आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे । 'जनमेजय का नागयज्ञ' एक मात्र पौराणिक नाटक है ।

इस प्रकार प्रसादजी ने ऐतिहासिक अनुशीलन और नवीन कल्पना के योग से अपनी नाट्यकला में नवीनता की उद्भावना की। इनकी सांस्कृतिक पुनरुत्थान की भावना, उनका दार्शनिक चिन्तन, उनकी स्वाभाविक चरित्र-कल्पना, उनका राष्ट्रियता के प्रति उत्कट आग्रह, संघर्ष के विष से जीवन के अमृत की खोज करना आदि बातों से वे एक महान ऐतिहासिक नाटककार के रूप में पेश आते हैं।

प्रसाद के नाटकों के नायक महान एवं गौरवनिष्ठ हैं, जो लक्ष्य की प्राप्ति के कर्तव्यनिष्ठ रहते हैं। वे शक्तिशाली तथा त्यागी हैं, जो अपनी मातृभूमि की आन एवं सम्मान के लिए अपना सर्वस्व लुटाने में गौरव समझते हैं। प्रसाद जी ने नाटकों के विषय में इतिहास का वह युग चुना है, जो आर्य संस्कृति का स्वर्णकाल गुप्तकाल था। जिसकी स्वर्णिम आभा सारे जगत् में फैल रही थी। उनके नाटकों का मूल उद्देश्य हिन्दु-सभ्यता और संस्कृति का चित्रण करना है। ध्रुवस्वामिनी नाटक में ऐतिहासिक तथ्यों के साथ उस समय की ज्वलंत समस्या विवाह विच्छेद को सफलता के साथ चित्रित किया है। प्रसाद पूर्व हिन्दी नाट्य रचनाओं में स्वतंत्र व्यक्तित्व सम्पन्न ऐसे चरित्रों की अवतारणा का जो अभाव था उसकी पूर्ति प्रसाद के नाटकीय चरित्रों द्वारा सम्भव हुई है। चरित्र चाहे वह पुरुष पात्र हो अथवा नारी, शिक्षित हो या अशिक्षित, उच्च वर्ग के हों या निम्न वर्ग के सभी को स्वाभाविक रूप में अंकित करने की ओर प्रसाद जी का विशेष आग्रह रहा है। उनके नारी चरित्र कल्पना एवं प्रगीत की प्रतिमूर्ति हैं। पात्रों में हृदय पक्ष के प्राबल्य के कारण ही उनके नाट्य-कृतियों के संवाद कवित्वपूर्ण हो गए हैं।

इसी काल में लोकनाथ सिलकारी का 'वीर ज्योति' (१९२५ ई.) में प्रकाशित हुआ। चन्द्रराज भंडारी ने 'महात्मा बुध्द' (१९२२ ई.) और 'सम्राट अशोक' (१९२३ ई.) ऐतिहासिक नाटक लिखे। जगन्नाथप्रसाद मिलिंद का 'प्रताप-प्रतिज्ञा' (१९२० ई.) में राजपूत चरित्र महाराणा प्रताप का शौर्य और मर्यादा का चित्रण अंकित किया है। दुर्गादास गुप्त ने 'भक्त तुलसीदास' (१९२२ ई.) 'महामाया' (१९२४ ई.) और 'देशोध्दार' नाटक लिखे।

प्रसाद युग में ही डॉ. सुवर्णसिंह वर्मा 'आनन्द' के 'छत्रपती शिवाजी'

और `नजामे अकबर` दो ऐतिहासिक नाटक मिलते हैं । विश्वंभर सहाय का `राजकुमार भोज` यह शिक्षाप्रद ऐतिहासिक नाटक व्यथित हृदय के `पुष्पफल` और `स्नेह बंधन`, परिपूर्णा नन्द के वर्मा के `नाना फडणीस`, `अवध राज्य का पतन`, `सत्तावन की क्रान्ति`, `नवाब वाजिद आली शाह`, जमुनादास मेहरा का `पंजाब केसरी`` रूपनारायण पाण्डेय का `मारवाड`, मिश्र बन्धुओं का `ईशान वर्मा` और `शिवाजी` (१९३८ ई.) पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र` जी का `महात्मा ईसा` (१९२२ ई.) और गोविंद वल्लभ पंत जी का `राजमुकुट` (१९२९ ई.) आदि अनेक ऐतिहासिक नाटक प्रसाद युग में ही मिलते हैं । लक्ष्मी ना. सागर (१९१२ ई.), गोविंद वल्लभ पंत कृत `वरमाल` (१९२५ ई.), `विक्रमादित्य` (१९३३ ई.) और `दाहर या सिन्धपतन` (१९३३ ई.) की रचना द्वारा उदयशंकर भट्ट पुन: प्राचीन भारतीय इतिहास की ओर उन्मुख हुए । बद्रीनाथ भट्ट कृत `दुर्गावती` (१९२५ ई.), प्रेमचंद कृत `कर्बला` (१९२४ ई.) इसी काल के नाटक हैं ।

संक्षेप में प्रसाद ने अपने नाटकों में पाश्चात्य एवं भारतीय नाट्य-तत्वों की संयोजना के सामंजस्य से नूतन नाट्य शिल्प का निदर्शन किया । साहित्य और इतिहास रस और शील, शाश्वत एवं सामयिक का विरल संयोग स्थल इनकी नाट्य कृतियों में हुआ है । प्रसाद से प्रेरणा पाकर प्रसाद युगीन नाटककारों ने भी अपने ऐतिहासिक नाटकों द्वारा प्रेरणा देने का कार्य किया है । प्रसाद का काल स्वाधीनता संग्राम का काल था । म. गांधी के नेतृत्व में स्वाधीनता संग्राम चल रहा था । ऐसे समय समाज को प्रेरणा देनेवाले साहित्य की आवश्यकता थी । प्रसाद युगीन नाटककारों ने इसी मांग को पूरा करने की भरसक प्रयत्न और कार्य किया । इस प्रकार जीवन दृष्टि की समग्रता तथा संतुलन के भव्य स्वरूप के कारण हिन्दी नाट्य क्षेत्र में प्रसाद का महत्वपूर्ण स्थान है ।

३) प्रसादोत्तर युग --

प्रसादोत्तर युग में ऐतिहासिक नाटक के सृजन में गति आ गयी । प्रसाद जी के पश्चात् हिन्दी में दो नाटककारों ने विशेष कार्य किया है -- १) हरिकृष्ण

प्रेमी २) उदयशंकर भट्ट ।

हरिकृष्ण प्रेमी जी ने अनेक ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं । उन्होंने अपने ऐतिहासिक नाटकों में मुगल कालीन राजपूती गौरव की झलक और हिन्दु-मुस्लिम एकता का चित्रण किया । `रक्षाबन्धन` (१९३४ ई.) इनका प्रसिध्द नाटक है । उनके अन्य नाटक `शिवा साधना` (१९३७ ई.) `प्रतिशोध` (१९३७ ई.), `आहुति` (१९४० ई.), `स्वप्नभंग` (१९४० ई.) , `छाया` (१९४१ ई.) `बन्धन` (१९४१ ई.) `मित्र` (१९४५), `विषपान` (१९४५ ई.), `उध्दार` (१९४६ ई.) , `शपथ` (१९५१ ई.), `कीर्तिस्तंभ` (१९५५ ई.) , `विदा` (१९५८ ई.) `साँपों की दृष्टि` (१९६० ई.), `आन का मान` (१९६५ ई.), आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे । उदयशंकर भट्ट कृत -- `मुक्तिपथ` (१९४४), `एक - विजय` (१९४६), `दाहर` या `सिन्ध पतन` (१९३४), उनके ऐतिहासिक नाटक प्रसिध्द हैं ।

प्रसादोत्तर काल में उपर्युक्त नाटकारों के अतिरिक्त अन्य ऐतिहासिक नाटककारों में सेठ गोविंददास और लक्ष्मीनारायण मिश्र विशेष उल्लेखनीय हैं । सेठ गोविंददास एक कुशल एकांकीकार भी हैं । उन्होंने `हर्ष` (१९३५), `कुलीनता` (१९४०), `शशिगुप्त` (१९४३), `शेरशाह` (१९४५), `अशोक` (१९५७), `महाप्रभु श्री वल्लभाचार्य` (१९५७), `रहीम` (१९५५), आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे ।

इसी काल में हिन्दी समस्या नाटक के जनक लक्ष्मीनारायण मिश्र ने अनेक ही ऐतिहासिक नाटक लिखे हैं । जिनमें प्रमुख हैं ---`(अशोक` (१९३६), `गरुडध्वज` (१९४६), `दशाश्वमेध` (१९५१), `जगद्गुरु` (१९६०), `वत्सराज` (१९५०), `वैशाली में वसन्त ( १९५६ ), `वितस्ता की लहरें` ( १९५३ ), `नारद की वीणा` (१९४६) आदि

प्रसादोत्तर काल में अन्य नाटक इस प्रकार हैं -- उपेंद्रनाथ अश्क कृत `जय-पराजय` (१९३७), द्वारका प्रसाद मौर्य कृत `हैदरअली` (१९३४), जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी का `तुलसीदास` (१९३४), सीताराम चतुर्वेदी कृत

`अनारकली` (१९३४), और `सेनापती पुष्यमित्र` (१९४५) , भगवती प्रसाद पाथरी कृत `काल्पी` (१९३८), धनीराम प्रेम का `विरांगना पन्ना` (१९३४), दरशरथ ओझा का `चितौड की देवी` (१९३४),कुमार हृदय का `भग्नावशेषा` (१९३५), यमुनाप्रसाद त्रिपाठी का `आजादी` या `मौत` (१९३६), कैलाशनाथ भटनागर का `कुणाल` (१९३६), गोपालचन्द्र देव का `सरजा शिवाजी` (१९३७), गौरी शंकर सत्येंद्र कृत `मुक्तियज्ञ` (१९३७), चन्द्रगुप्त विद्यालंकार कृत `अशोक` (१९३७), `रेवा` (१९३८), चन्द्रशेखर पाण्डेय कृत `रजपूत रमणी` (१९३७), मेवाड उध्दार` ( १९३९ ), मिश्रबन्धु का `शिवाजी` (१९३८ ), परिपूर्णानन्द का `रानी भवानी` ( १९३८ ) संत गोकुलचन्द कृत `मीरा` ( १९३९ ), बलदेव प्रसाद मिश्र कृत `क्रान्ति` ( १९३९ ), गोविंदवल्लभ पंत का `अंतःपुर का छिद्र` ( १९३९ ), शंभुदयाल सक्सेना का `साधना पथ` (१९४० ),हरिश्चचंद्र सैठ कृत `पुरु और अलेक्जेण्डर (१९४०), बैकुण्ठनाथ दुग्गल का `श्री हर्ष` (१९४१), कुँवर वीरेन्द्र सिंह का `मर्यादा का मूल्य` (१९४२), रूप नारायण पाण्डेय कृत `पद्मिनी` और `मारवाड गौरव` (१९४२), भानुप्रताप सिंह का `राज्यश्री` (१९४३), न्यादरसिंह बेचैन कृत `अमरसिंह राठौर` (१९४७), सुदर्शन कृत `सिकन्दर` (१९४७), विराज का सम्राट विक्रमादित्य` (१९४७) आदि ऐतिहासिक नाटक इस काल में लिखे गये ।

सारांश --

स्वाधीनता और राष्ट्रीय चेतना का प्रसार करनेवाली उक्त नाट्य-कृतियों में दो प्रकार की प्रवृत्तियाँ उपलब्ध होती हैं । १) जिनमें प्रसाद के ऐतिहासिक नाटकों की भाँति सांस्कृतिक पुनरुत्थान की बलवती चेतना निहित है, तथा २) वे राष्ट्रीयता परक आधुनिक प्रवृत्तियाँ जो ऐतिहासिक कथा के ताने-बाने में अपने सम्पूर्ण परिवेश के साथ चित्रित हुई हैं । इस काल के नाटक प्रसाद की परम्परा को आगे बढाते हैं । राष्ट्रीयता इन नाटकों की मूल प्रेरणा हैं । भाषा में सरलता और अभिनयोचित गति हैं । हिन्दु-मुस्लिम एकता,देशभक्ति,अछूतोध्दार

आदि युगीन समस्याओं को न्यूनाधिक रूप में भी सभी नाटककारों ने अपनी नाट्य-कृतियों में अंकित किया है।

इस प्रकार प्रसादोत्तर युगीन समग्र ऐतिहासिक नाटक भारतीय समाज को प्राचीन इतिहास की याद दिलाकर आदर्श की ओर ले जानेवाली है।

४) स्वातंत्र्योत्तर काल --

भारतीय स्वातंत्र्योत्तर काल (१९४७) का हिन्दी नाट्य साहित्य के इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है। नाटक का सही अर्थों में विकास और विस्तार यही से हुआ है। इस काल के नाटककारों का ध्यान रंगमंच की ओर गया और नाटक में अभिनव प्रयोगों का आरंभ हुआ।

प्रसादोत्तर काल के अनेक नाटककारों ने इस युग में ऐतिहासिक नाटक लिखे - जिनमें प्रमुख हैं -- लक्ष्मीनारायण मिश्र। वैसे देखा जाय तो मिश्र जी समस्या नाटक लिखते थे, लेकिन उन्होंने इस काल में ऐतिहासिक नाटक लिखना शुरु किया। उनके प्रमुख नाटक -- 'वत्सराज' (१९४९), 'दशाश्वमेध' (१९५०) 'चक्रव्यूह' (१९५३), 'वितस्ता की लहरें' (१९५२), 'वैशाली में वसन्त' (१९५५), 'जगद्गुरु' (१९६१), 'अपराजित' (१९६१), 'चित्रकूट' (१९६१), 'धरती का हृदय' (१९६२) 'कविभारती' (१९६७), आदि।

जब हम मिश्र जी के ऐतिहासिक नाटकों की तुलना प्रसाद के नाटकों के साथ करें तो यह स्पष्ट होता है कि जिसप्रकार प्रसाद ने अपने ऐतिहासिक चरित्रोंद्वारा राष्ट्रीयता की उदात्त भावना को संचारित करने का प्रयत्न किया और भारतीय संस्कृति की श्रेष्ठता को दिखाकर आत्मगौरव को जगाया, ठिक उसी प्रकार मिश्र जी ने भी प्राचीन संस्कृति की श्रेष्ठता तथा अतीत की उज्ज्वलता को प्रदर्शित करके देश की संस्कृतिनिष्ठा और राष्ट्रीय भावना को जगाने का प्रयत्न किया है। इसलिए दोनों ने भी भारतीय इतिहास के गौरवपूर्ण अंशों को अपने नाटकों का कथानक बनाया है।

प्रसादोत्तर काल के प्रमुख ऐतिहासिक नाटककार हरिकृष्ण प्रेमी ने भी

स्वातंत्र्योत्तर काल में कई ऐतिहासिक नाटक लिखे । ऐतिहासिक नाटक लिखने की प्रेरणा मुझे कैसी मिली, इस विचार में प्रेमीजी ने लिखा है ---

` पंजाब में ज्ञान बाँसुरी और कर्म का शंख फुंकनेवाली बहन कुमारी लज्जावती ने एक बार मुझसे कहा था कि, हमारे भारतीय साहित्य में हिन्दुओं और मुस्लिमों को एक दूसरे से दूर करनेवाली पुस्तकें तो बहुत बढ रही हैं । उन्हें मिलाने का प्रयत्न बहुत थोडे साहित्यकार कर रहे हैं । तुम्हें इस दिशा में प्रयत्न करना चाहिए । इसी लक्ष्य को सामने रखकर उन्होंने मुझे ऐतिहासिक नाटक लिखने का आदेश दिया ।` [१]

हरिकृष्ण प्रेमी जी की ऐतिहासिक नाट्य-रचनाएँ - ` उद्धार ` (१९४९), ` शपथ ` (१९५१), ` प्रथम जौहर ` कीर्तिस्तंभ (१९५४), ` शतरंज के खिलाडी ` (१९५५), ` आन का मान `, ` सांपों की दृष्टि ` (१९५८), ` विदा ` (१९५८), ` शाहजहाँ `, ` रक्तदान `, ` विषपान ` आदि ऐतिहासिक नाटक हैं ।

स्वातंत्र्योत्तर काल के उपन्यासकार डॉ. वृन्दावनलाल वर्मा जी ने ` फूलों की बोली ` (१९४७), ` पूर्व की ओर ` (१९४९), ` झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई `, (१९४८), ` हंस मयूर ` (१९४८), ` बीरबल ` (१९४९), ` ललित विक्रम ` (१९५८), आदि ऐतिहासिक नाटक लिखे ।

स्वातंत्र्योत्तर काल के अन्य ऐतिहासिक नाटक इस प्रकार हैं -- डॉ. देवीलाल पामर का ` राजस्थान का भीष्म ` (१९४७), ` रामवृक्ष बेनीपुरी कृत ` अम्बपाली ` ( १९४७ ), ` तथागत ` ( १९४० ), चतुरसेन शास्त्री कृत ` अजितसिंह ` ( १९४९ ), ` राजसिंह ` ( १९४९ ), ` अमरसिंह ` और ` छत्रसाल ` ( १९५१ ), । उदयशंकर भट्ट कृत ` शक-विजय ` ( १९४९ ), बैकुण्ठनाथ दुग्गल कृत ` समुद्रगुप्त ` ( १९४९ ), मोहनलाल महतो कृत ` अपनजल वध ` ( १९५० ), ब्रजकिशोर नारायण कृत ` वर्धमान महावीर ` ( १९५० ), रामदत्त भारद्वाज का ` सारों का संत ` ( १९५० ), उदयशंकर भटनागर का ` हमीर हठ `

---

१ शिवा साधना - नाटक - भूमिका ।

(१९५०), जगदीश्चंद्र माथुर के `कोणार्क` (१९५१), `शारदीया` (१९५८), जनार्दन राय नागर का `आचार्य चाणाक्य` (१९५१), दशरथ ओझा के `सम्राट समुद्रगुप्त` (१९५२), `स्वतंत्र भारत और` `प्रियदर्शी सम्राट अशोक` . देवराज दिनेश का `मानव प्रताप` (१९५२), डा. रांगेय राघव कृत `रामानुज` (१९५२) और `विरूढक` (१९५५), विष्णु प्रभाकर कृत `समाधि` (१९५४), ओंकारनाथ दिनकर कृत `मंजुदेव` अथवा `वागीश्वर` (१९५४), `विग्रहराज विशालदेव` (१९५७), `अंतिम सम्राट` (१९५८), `धारेश्वर भोज` (१९५८), `भगवान बुध्ददेव` (१९६६), `मृत्युंजय` और `मुक्तियस` (१९६७), बनारसीदास करुणाकर का `सिध्दार्थ बुध्द` (१९५५) और `रहमी` (१९५५), चतुर्भुज का `कलिंग-विजय` (१९५६), भगवती प्रसाद वाजपेयी का `राय पिथौरा` (१९५८), शम्भुदयाल सक्सेना का `बापू ने कहा था` (१९५८), पाण्डेय बेचन शर्मा `उग्र` जी का `अन्नदाता माधव महाराज महान`, डा. रामगोपाल शर्मा `दिनेश` जी के `सोमनाथ` (१९५५) और `पृथ्वीराज` (१९६३), मोहन राकेश कृत `आषाढ़ का एक दिन` (१९५८), `लहरों के राजहंस` , शारदा मिश्र का `आजमेर की सरस्वती` (१९६५), अकिंचन शर्मा का `गुरुदेव चाणाक्य` (१९७०), विमल वात्सायन के `उत्सर्ग` (१९६८) और `लहर लहर मधुपर्क` (१९७०), भगवानदास गोस्वामी का `राव जैसो` (१९६६) तथा सत्येन्द्र पारीक का `प्यासी दरिया` (१९७१) आदि अनेक ऐतिहासिक नाटक स्वातंत्र्योत्तर काल में लिखे गये ।

निष्कर्ष ---

स्वातंत्र्योत्तर ऐतिहासिक नाटक प्रसादोत्तर नाटकों से भिन्न उद्देश्य को लेकर लिखे थे । स्वातंत्रता के पहले ऐतिहासिक नाटकों का उद्देश्य `स्वाधीनता की प्रेरणा दिलाना था किन्तु स्वातंत्र्योतर नाटकों का प्रधान उद्देश्य जनता में स्व-राष्ट्र रक्षा की भावना भरना तथा देश को पतन के गर्त में ढकलनेवाले उपकरणों के प्रति हमें सचेत रहना चाहिए । स्वातंत्र्योत्तर काल के ऐतिहासिक नाटकों में राष्ट्रीय एकता जन संगठन की चेतना ,समानता,आदर्श कल्पना आदि

विचार दिखाई देते हैं।

उपर्युक्त विचार स्वातंत्र्योत्तर काल के ऐतिहासिक नाटकों के उद्देश्य को स्पष्ट करते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि ऐतिहासिक नाटकों का उद्देश्य अत्यंत महत्वपूर्ण ऐसा होते हुए भी समसामयिक युग के लिए प्रेरणाप्रद ठहरता है। इसलिए इस काल के ऐतिहासिक नाटक के कथानक और चरित्र चित्रण की अपेक्षा उद्देश्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

समग्र हिन्दी के ऐतिहासिक नाटकों में इतिहास के चरित्रों तथा घटनाओं को लेकर वर्तमान जीवन को दिशा देने का कार्य नाटककारों ने किया है। ऐतिहासिक नाटक की कथावस्तु भले ही इतिहास से संबंधित हो उसमें शाश्वत सत्य रहता है, जिसका संबंध वर्तमान कालीन एवं भविष्यकालीन मानवजीवन से बराबर बना रहता है।

A
11732